शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

जैन परम्परा में त्रिलोक रचना

डॉ. पवन पाठक
श्री अटलबिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय
इंदौर, मध्यप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

सृष्टि की संरचना को समझने के लिए मनुष्य प्रारंभ से ही प्रयत्नशील रहा है। पृथ्वी पर रहते हुए उसने आकाश के उस पार तक देखने का प्रयास किया है। उसके रहस्यों को जानने के लिए मनुष्य ने कल्पना की ऊंची से ऊंची उड़ान भरी है। अन्य धर्मों के समान ही जैन परम्परा में भी त्रिलोक रचना पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में जैन परम्परा में त्रिलोक रचना पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

जहाँ पुण्य व पाप का फल (सुख-दुःख) देखा जाता है, वह लोक है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार लोक का अर्थ आत्मा है जो पदार्थों को देखे व जाने वह लोक है। जन्म-जरा-मरण रूप यह संसार भी लोक कहलाता है। इस प्रकार लोक अकृत्रिम, अनादि निधन और स्वभाव निष्पन्न हैं।1

लोकविज्ञान और लोकविद्या का प्रतिपादन जैन ग्रन्थों में अत्यंत विस्तार से किया गया है। लोक प्रकृति से ही अनादि-अनंत है और उसमें सर्वत्र छः द्रव्य व्याप्त हैं, जो जीव और अजीव नामक दो वर्गों में विभक्त हैं। ज्ञान और दर्शन ऐसे गुण हैं एवं सुख और दुख ऐसी अनुभूतियाँ हैं जो किसी सत्ता में ही संभव है। यही सत्तावान जीव द्रव्य है। अजीव द्रव्य के अंतर्गत पुद्गल (भौतिक पदार्थ), धर्म (गति का माध्यम), अधर्म (स्थिति का माध्यम), आकाश, काल आते हैं।2

लोकरचना का यह चित्र तीनों लोकों का प्रतीक है। लोक और उसके भागों का आकार गणित और ज्यामितीय के अनुरूप है, यह आकार वस्तुतः मनुष्य की मुद्रा के समान है जिसमें वह हाथ कमर पर रखकर और दोनों पैर बगलों में फैलाकर खड़ा है। लोक के अंतर्गत लोकाकाश है, और उसके बाहर अलोकाकाश है।3

लोक का आकार

पूर्व से पश्चिम की ओर से लोक का आकार कमर पर दोनों हाथ रखकर और पैरों पर फैलाकर खड़े हुए मनुष्य के आकार का प्रतीत होता है।4 लोक के तीनों प्रकारों में अधोलोक का आकार स्वभाव से वेत्रासन के सदृश है और मध्यलोक का आकार खड़े हुए आधे मृदंग के उध्र्वभाग के समान है।5 ऊर्ध्वलोक का आकार खड़े किये मृदंग के समान है। 'धवला' में लोक को तालवृक्ष के आकार वाला कहा है।6

इस लोक के तीन भेद हैं

अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक। अधोलोक का आकार स्वभाव से वेत्रासन के सदृश, मध्यलोक थाली के समान व ऊर्ध्वलोक मृदंग के आकार का है। यह अविनाशी है। जिस प्रकार घर में छींका लटका रहता है उसी प्रकार अनंत अलोकाकाश के बीच में यह लोक लटक रहा है। छींके को तो रस्सी का आधार है पर यह लोकाकाश निराधार है, अर्थात् वनोदधि वातवलय

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

घन वातवलय के आधार पर है व घनवातवलय तनुवातवलय के आधार पर है। तनुवातवलय आकाश के आधार पर है और आकाश किसी के आधार पर नहीं है। स्वप्रतिष्ठित है, सर्वव्यापी है। लोक के चारों तरफ वातवलयों की मोटी परत है, जिसमें घनोदधि वातवलय का रंग गोमूत्र के समान, घनवातवलय का रंग मूंग के समान व तनुवात का रंग नाना प्रकार के रंग वाला है। ये वातवलय वृक्ष की छाल के समान लोक को चारों तरफ से घेरे हुए हैं।

अधोलोक

अधोलोक में नरक है, जहाँ नारकी रहते हैं। लोक में सबसे नीचे निगोदराशि है, जहाँ अनंत जीव एक श्वास में 18 बार जन्म मरण के दुख भोगते रहते हैं, इसके ऊपर सात नरक हैं, इनके नाम रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा व महातम प्रभा है, पाप के उदय से जीव इन सातों नरकों में जाकर महान दुःख भोगते हैं व निरंतर मार-काट करते रहते हैं।7

मध्यलोक

अधोलोक के ऊपर मध्यलोक है। मध्यलोक में सिद्ध परमेष्ठी को छोड़कर शेष चार परमेष्ठी एवं अन्य जीव (देव, मनुष्य, तिर्यंच) रहते हैं। मध्यलोक एक राजू की ऊँचाई व एक राजू की चौड़ाई में है। इसके बीचोबीच में नाभि के समान सुदर्शन मेरू है, जो एक लाख योजन की ऊँचाई का है। यह जम्बूद्वीप में है। जम्बूद्वीप के चारों तरफ एक को एक घेरे हुए असंख्यात द्वीप समूह हैं। जम्बूद्वीप में धातकीखण्ड व आधे पुष्करार्द्ध द्वीप में मनुष्य रहते हैं। इसके पश्चात् मानुषोत्तर पर्वत है। जिसे लांघकर विद्याधर व मनुष्य कोई नहीं जा सकते, सिर्फ देव ही जा सकते हैं। इन ढाई द्वीपों में ही पांचमेरू, कर्मभूमि, योगभूमि, विदेहक्षेत्र पर्वत, नदी आदि की रचना है। यहाँ चंद्र-सूर्य पंचमेरू पर्वतों की निरंतर प्रदक्षिणा करते रहते हैं, जिससे दिन, रात का विभाग व ऋतु परिवर्तन होते हैं।8

ऊर्ध्वलोक

मध्यलोक के ऊपर ऊर्ध्वलोक है। ऊर्ध्वलोक में स्वर्ग है। जिसमें देवगण निवास करते हैं। ऊर्ध्वलोक या स्वर्गलोक में, सोलह रूप विमान 9, नौ ग्रेवेयक विमान 10, नौ अनुदिश विमान 11, और पाँच अनुत्तर विमान हैं।12 कल्प और ग्रैवेयक विमानों के अधिकांश और शेष विमानों के सब देव प्रकृति से ही जिनेन्द्र भक्त होते हैं। इन विमानों के ऊपर सिद्धशिला पर सिद्धालय है। यह शिला अर्द्धचन्द्राकार पैंतालिस लाख योजन की है व लोकाग्र पर छत्र के समान है। जहाँ अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठी भगवान अनंतकाल से अपने-अपने आसन से विराजमान हैं व अनंतकाल तक होते रहेंगे। इसके आगे धर्म द्रव्य का अभाव है। कोई भी जीव आगे नहीं जा सकता। इसके आगे तीनों वातावलय हैं, फिर अलोकाकाश है।

जैन शास्त्रों में वर्णित त्रिलोक रचना के आकार में निचला भाग अधोलोक, बीच का भाग मध्यलोक, तथा ऊपर का भाग ऊर्ध्वलोक का प्रतीक है। यह आकार वस्तुतः मनुष्य की मुद्रा के समान है जिसमें वह हाथ कमर पर रखकर और दोनों पैर बगलों में फैलाकर खड़ा है। ऊर्ध्वलोक में जैन परम्परा में त्रिलोक का यह प्रतीक चिह्न के निचले भाग में प्रदर्शित हाथ अभय का प्रतीक है और लोक के सभी जीवों के प्रति अहिंसा भाव रखने का प्रतीक है। हाथ के बीच में 24 आरों वाला चक्र है। वह चक्र चौबीस तीर्थंकरों द्वारा प्रणीत जिनधर्म का दिग्दर्शन कराता है, जिसका मूलभाव अहिंसा है। ऊपरी भाग में प्रदर्शित स्वस्तिक की चार भुजाएं गतियों - नरक, तिर्यंच,

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मई 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

मनुष्य एवं देव गति की द्योतक हैं। प्रत्येक संसारी प्राणी जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त होना चाहता है। स्वस्तिक के ऊपर प्रदर्शित तीन बिन्दु सम्यक्रत्नत्रय-सम्यकदर्शन, सम्यक्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र को दर्शाते हैं और संदेश देते हैं। सम्यक्रत्नत्रय के बिना प्राणी मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है। सम्यक् रत्नत्रय का ज्ञान एवं पालन जैनागम के अनुसार मोक्ष प्राप्ति के लिए परम आवश्यक है। त्रिलोक रचना का यह जैन प्रतीक चिह्न संसारी प्राणी की वर्तमान दशा एवं इससे मुक्त होकर सिद्धशिला तक पहुँचने का मार्ग दर्शाता है।13 जैन दृष्टि से त्रिलोक रचना का यह चित्र सम्पूर्ण सृष्टि विज्ञान का प्रतीक है। जैन मंदिरों, शास्त्रों, चित्रकला, स्थापत्य कला आदि सभी स्थानों पर त्रिलोक का अंकन दृष्टिगत होता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. (अ) जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, पृष्ठ 438
(ब) सर्वार्थसिद्धि (विशेषार्थ) पृष्ठ 311
(स) सर्वार्थसिद्धि का दार्शनिक परिशीलन, सीमा जैन, पृष्ठ 137
2. जैनकला एवं स्थापत्य- अमलानंद घोष, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृष्ठ 530
3. तत्त्वार्थ वार्तिक, 5/12/10-13
4. तिलोयपण्णति, 1/137-138
5. धवला 4/1, 3, 2
6. श्री जैन मंडल विधान विधि एवं चित्र परिचय, प्रभावती कासलीवाल, 'विशारद', प्रकाशिका- कस्तूरीबाई जैन पांड्या, वर्ष 1996, पृष्ठ 6
7. श्री जैन मंडल विधान विधि, चित्र परिचय, पृष्ठ 7
8. जैन कला एवं स्थापत्य - अमलानंद घोष, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ 535
9 सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, महेन्द्र, ब्राह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ठ, शुक, शतार, सहस्रार, आनत, वासकयता, प्राणत, आरण और अच्युत।
10 सुदर्शन, अमोध, सुबुद्ध, पयोधर, सुभद्र, सविशाल, सुमनस्, सौमनस और प्रियंकर।
11 लक्ष्मी, लक्ष्मीमालिक, वैरेवक, रोचनक, सोम, सोमरुप्य, अंक, पल्यंक और आदित्य।
12 विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि।
13 जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग 2